इकाई 2 प्रमुख स्कन्ध – सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.2 सिद्धान्त स्कन्ध का संक्षिप्त परिचय

2.3 सिद्धान्त स्कन्ध का महत्त्व

2.4 सिद्धान्त–स्कन्ध की प्रतिष्ठा में आर्यभट और वराहमिहिर की भूमिका

- 2.4.1 आर्यभटीय
- 2.4.2 पञ्चसिद्धान्तिका

2.5 सिद्धान्तस्कन्ध की प्रगति

- 2.5.1 ब्रह्मगुप्त
  - 2.5.1.1 ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त
  - 2.5.1.2 खण्डखाद्य
- 2.5.2 लल्ल
  - 2.5.2.1 शिष्यधीवृद्धिदम्

2.6 सिद्धान्त स्कन्ध का उन्नतिकाल

- 2.6.1 भास्कराचार्य (भास्कर द्वितीय)
- 2.6.2 भास्कराचार्य का कर्तृत्व
  - 2.6.2.1 लीलावती
  - 2.6.2.2 बीजगणित
  - 2.6.2.3 सिद्धांतशिरोमणि
- 2.6.2 मकरन्दाचार्य
- 2.6.3 गणेश दैवज्ञ
  - 2.6.3.1 गणेश दैवज्ञ का काल व कृतियां
  - 2.6.3.2 ग्रहलाघव

2.7 सिद्धान्तस्कन्ध का चरमोत्कर्ष

2.8 सारांश

2.9 शब्दावली

2.10 बोध प्रश्न

2.11 उपयोगी पुस्तकें

2.0 प्रस्तावना

इसके पूर्व हमने ज्योतिष–शास्त्र के विविध स्कन्धों (पक्षों) पर एक विहंगम दृष्टिपात के द्वारा इस शास्त्र की विकास–यात्रा को समझाने का प्रयास किया।इस इकाई में हम भारतीय ज्योतिष के सिद्धान्त–स्कन्ध के सबसे प्रतिष्ठित खगोलज्ञों और गणितज्ञों की चर्चा करेंगे।

यद्यपि इस स्कन्ध में अनेकों प्रख्यात ज्योतिर्विद हुए हैं किन्तु आपके स्वाध्याय–सामग्री की सीमा को देखते हुए इस स्कन्ध के विकास–क्रम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले कुछ विद्वानों का उल्लेख संक्षेप में इस इकाई में प्रस्तुत किया जा रहा है। संक्षिप्त इसलिए क्यूंकि इनमें से एक–एक का विस्तृत वर्णन स्वयं में एक–एक खण्ड की अपेक्षा रखता है। अतः इन विद्वानों के विषय में विस्तृत ज्ञान हेतु इनके मूल ग्रंथों और भारतीय ज्योतिष के इतिहास के मूलग्रंथों को देखना चाहिए।

2.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- ज्योतिष के सिद्धान्त–स्कन्ध को परिभाषित करने में समर्थ हो सकेंगे।
- सिद्धान्तस्कन्ध के इतिहास का निरूपण करने में कुशल हो सकेंगे।
- सिद्धान्त स्कन्ध में वराहमिहिर, आर्यभट के अवदान को निरूपित करने में समर्थ हो सकेंगे।
- सिद्धान्त स्कन्ध में लल्ल और ब्रह्मगुप्त के अवदान को रेखाङ्कित करने में समर्थ होंगे।
- भास्कराचार्य के ग्रन्थ का स्वरूप को समझा सकने में कुशल हो सकेंगे।
- सिद्धान्त स्कन्ध के चरमोत्कर्ष के वर्णन में निपुण हो सकेंगे।

2.2 सिद्धान्त स्कन्ध का संक्षिप्त परिचय

सिद्धान्त स्कन्ध के ऐतिहासिक पक्ष के विस्तृत अध्ययन के पूर्व आइए थोड़ी चर्चा सिद्धान्त स्कन्ध के स्वरूप पर कर लेते हैं। जैसा कि आप जानते हैं ज्योतिष त्रि–स्कन्धात्मक है। इन स्कंधों में सिद्धान्त का क्या स्वरुप है– ऐसी जिज्ञासा आपके मन में उठना स्वाभाविक है। यदि एक वाक्य में कहें तो ग्रहों की गति, स्थिति, ग्रहण–काल आदि की गणना ज्योतिष के जिस स्कन्ध में की जाए वह 'सिद्धान्त' कहलाता है। सिद्धान्त के संक्षिप्त परिचय को बड़े ही सुन्दर शब्दों में परिभाषित करते हुए स्वयं भास्कर कहते हैं –

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलनामानप्रभेदः क्रमाच्,
चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः।
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितैश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते,
सिद्धान्तः स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः।।

(सिद्धान्तशिरोमणि, गणिताध्याय,मध्यमाधिकार१/५)

त्रुटि से लेकर प्रलय तक की काल गणना और उस काल को मापने के विविध तरीके, ग्रहों के विभिन्न राशि या नक्षत्रों में संचरण, प्रश्न तथा उत्तर इन दो प्रकार की गणित, पृथ्वी, नक्षत्र और ग्रहों की आकाशीय स्थिति और विविध यन्त्रों का अध्ययन जिस गणित–स्कंध में करते हैं, उसे ही विद्वान् लोग 'सिद्धान्त' कहते हैं।नृसिंह दैवज्ञ सिद्धान्त को परिभाषित करते हुए कहते हैं –**'व्यक्ताव्यक्तखगोलवासनामयः** सिद्धान्त आदिरिति'। अर्थात् व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप खगोलशास्त्र–सम्बन्धी टीका से युक्त सिद्धान्त नामक स्कन्ध सभी स्कन्धों में प्रथम है।इस सिद्धान्त के ही तीन अवान्तर भेद

१. सिद्धान्त, २. तन्त्र और ३. करण हैं, जिनको पिछले अध्याय में परिभाषित कर दिया गया है।

2.3 सिद्धान्त स्कन्ध का महत्त्व

यद्यपि सभी स्कन्ध महत्व के हैं किन्तु बिना सिद्धान्त स्कन्ध के ज्ञान के ज्योतिष ज्ञान अपूर्ण है। भास्कराचार्य ने तो सिद्धान्त–ज्ञान से रहित मनुष्य को दीवार पर टंगे राजा के चित्र के समान महत्वहीन कह दिया है यथा–

जानन् जातकसंहिता सगणितस्कन्धैकदेशा अपि,
ज्योतिःशास्त्रविचारसारचतुरप्रश्नेष्वकिञ्चित्करः।
यः सिद्धान्तमनन्तभेदवितथं नो वेत्ति भित्तौ यथा,
राजा चित्रमयोऽथवा सुघटितः काष्ठस्य कण्ठीरवः।।

(सिद्धान्तशिरोमणि, गणिताध्याय,मध्यमाधिकार१/७)

अर्थात् जातक (होरा) और संहिता इन स्कंधों को जानता हुआ भी जो अनेक भेद के आधार पर मुख्यतःतीन और विषय के आधार पर अनेक प्रकार के गणितीय भेदों से युक्त इस सिद्धान्त स्कन्ध को नहीं जानता है, वह ज्योतिष शास्त्रीय सारपूर्ण गम्भीर प्रश्नों के उत्तर में विचारशून्य होता हुआ उसी प्रकार का महत्वहीन माना जाता है जैसा कि दीवार पर चित्र के रूप में टंगा हुआ राजा या बहुत ही सुन्दरता से गढ़ा किन्तु काठ का शेर प्रभावहीन होता है।

इसका कारण यही है की बिना गणित व खगोल के ग्रहों की स्पष्ट आकाशीय स्थिति को जानना संभव नहीं है, जिसके अभाव में ग्रहों के व्यक्तिगत या समष्टिगत प्रभाव का भी सही आंकलन और अध्ययन सम्भव नहीं है। इसी बात को भास्कर सिद्धान्त शिरोमणि में कहते हैं –

ज्योतिषशास्त्रफलं पुराणगणकैरादेश इत्युच्यते,
नूनं लग्नबलाश्रितं पुनरयं तत्स्पष्टखेटाश्रयम्।

(सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्याय,गोलप्रशंसाध्याय १/७)

अर्थात् ज्योतिष शास्त्र के फल को पुराने विद्वानों ने 'आदेश' कहा है जो निश्चित ही लग्न के बल पर आधारित है और वो लग्न,स्पष्टग्रह साधन पर आधारित है।

जिस काल में सिद्धान्त स्कन्ध को इतना महत्वपूर्ण माना जाता था उस काल में उस स्कन्ध की उन्नति क्यूं नहीं होगी। इस कालखण्ड में सिद्धान्त के सभी भेदों में ग्रंथों की अत्यधिक रचना हुई। अब आगे उस कालखण्ड के बारे में आप जानेंगे।

2.4 सिद्धान्त–स्कन्ध की प्रतिष्ठा में आर्यभट और वराहमिहिर की भूमिका

भारतीय ज्योतिष में सिद्धान्त–स्कन्ध के स्वतंत्र ग्रन्थ आर्यभट्ट एवं वराहमिहिर के समय से ही मिलते हैं अतःइन दोनों का काल ज्योतिष के इस स्कंध की प्रतिष्ठा का काल माना जा सकता है। आर्यभट्ट का जन्म समय ४७६ ईसवी माना जाता है और वराहमिहिर का काल ५०५ ई. माना जाता है। आर्यभट ने कुसुमपुर (आधुनिक पटना) में एक उत्कृष्ट सिद्धान्त ग्रन्थ 'आर्यभटीयम् की रचना की जबकि वराहमिहिर ने अपने समय के विद्यमान सिद्धान्तो का संकलन अपने करण–ग्रन्थ 'पञ्चसिद्धान्तिका' में किया।

2.4.1 आर्यभटीयम्

इस ग्रन्थ में कुल १२१ श्लोक हैं जो चार खण्डों १. गीतिकापाद, २. गणितपाद, ३. कालक्रियापाद और ४. गोलपाद में विभक्त है।आर्यभट की अनेक विशेषताओं में से एक प्रमुख है अक्षरों के द्वारा संख्या को प्रकट करने की विधि। इस विधि का निरूपण करते हुए आचार्य कहते हैं –

वर्गाक्षराणि वर्गेऽवर्गेऽवर्गाक्षराणि कात् ङमौ यः।
खद्विनवके स्वरा नव वर्गेऽवर्गे नवान्त्यवर्गे वा।।

अर्थात् क से आरम्भ करके वर्ग अक्षरों को वर्ग स्थानों में और अवर्ग अक्षरों को अवर्ग स्थानों में व्यवहार करना चाहिए, इस प्रकार ङ और म मिलकर 'य' होता है। वर्ग और अवर्ग स्थानों के ९ के दूने शून्यों को ९ स्वर प्रकट करते हैं। यही क्रिया ९ वर्ग स्थानों के अंत के पश्चात दुहरानी चाहिए।

इकाई (१), सैकड़ा (१००), दस हज़ार (१००००), दस लाख (१०००००) आदि विषम स्थानों को वर्ग स्थान कहते हैं क्योंकि इनके वर्गमूल पूर्णांकों में जाने जा सकते हैं। किन्तु दहाई (१०), हज़ार (१०००), लाख (१००००), करोड़ (१०००००) आदि सम स्थानों को अवर्ग स्थान कहते हैं, क्योंकि इनके वर्गमूल पूर्णाकों में नहीं मिलते हैं।

इनके अनुसार अक्षरों की संख्या लिखने की रीति इस प्रकार है –क= १ ख = २, ग= ३, घ = ४, ङ = ५, च = ६ छ = ७.....इसी क्रम से म = २५, य = ३०, र = ४०, ल= ५०..... ह = १००, अ = १, इ = १००, उ = १००००..... इसीक्रम में अन्य अक्षरों से संख्यानिर्धारण समझना चाहिए।

इस संख्या–निर्धारण विधि के अनुसार एक महायुग में सूर्य के भगणों की संख्या ४३२०००० को आर्यभट 'ख्युघृ' कहते हैं।

'आर्यभटीयम्' पर भास्कर प्रथम, सूर्यदेव यज्वा की 'आर्यभटप्रकाश' टीका, परमेश्वर की 'भटदीपिका' और नीलकण्ठ की टीकाएं एवं डा. केर्न की अंग्रेज़ी टीका है।

2.4.2 पञ्चसिद्धान्तिका

वराहमिहिर ने सर्वप्रथमपञ्चसिद्धान्तिका नामक करण ग्रन्थ की रचना की। जैसा कि पूर्व में चर्चा की गयी है कि इसमें तत्कालीन पांच सिद्धांत ग्रंथों– सौर, पितामह वाशिष्ठ, रोमक और पौलिश का वर्णन है, जिसमें ग्रहों की गति–स्थिति–ग्रहण आदि के साधन सम्बन्धी विषयों की चर्चा है। इन सभी सिद्धान्तों का संक्षेपतः संकलन करके इन पाँचों का गणित की दृष्टि से आंकलन भी किया है। उनके अनुसार सौर सिद्धांत इन सभी में उत्तम है–

पौलिशकृतो स्फुटोऽसौ तस्यासन्नस्तु रोमकः प्रोक्तः।
स्पष्टतरः सावित्रः परिशेषौ दूरविभ्रष्टौ।।

(पञ्चसिद्धान्तिका, १/४)

अर्थात् पौलिश सिद्धान्त गणितीय दृष्टि से स्पष्ट है, रोमक भी उसी के आस–पास है। सबसे स्पष्टसौर सिद्धान्त है अन्य दो (पैतामह और वाशिष्ठ) अत्यन्त अशुद्ध हैं।यह ग्रन्थ सिद्धान्त स्कन्ध है। इस ग्रन्थ पर महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी और जी थिबो कृत टीका भी उपलब्ध है।

2.5 सिद्धान्तस्कन्ध की प्रगति

वराहमिहिर और आर्यभट्ट ने जो राह दिखाई या सिद्धान्त–ज्योतिष के क्षेत्र में जो नई युक्तियों और विचारधाराओं के द्वार खोले उन विचारों ने परवर्ती आचार्यों को बहुत प्रेरित किया और पूर्व की तुलना में ज्योतिष के खासकर सिद्धांत ज्योतिष के स्वतन्त्र ग्रन्थों का प्रणयन अधिक मात्रा में हुआ। फलतः ज्योतिष के क्षेत्र में नई–नई प्रतिभाओं और विचारों का उदय होने के कारण इस शास्त्र को बड़ी गति मिली। यही वजह है कि इस काल–खण्ड को सिद्धांत ज्योतिष का प्रगति–काल समझना अधिक उचित होगा।

इस काल–खण्ड के प्रसिद्ध विद्वान् ज्योतिर्विद् इस प्रकार हैं श्रीषेण, विष्णुचन्द्र, ब्रह्मगुप्त, लल्ल, पद्मनाभ, श्रीधर, महावीर, बलभद्र, वित्तेश्वर, मुंजाल, आर्यभट्ट द्वितीय, पृथूदकस्वामी, भटोत्पल, विजयनंदि, भानुभट्ट, वटेश्वर, श्रीपति, भोजराज और दशबल। ये उन विद्वानों की सूची है जिनके ग्रन्थ अद्यावधि मिलते हैं इसके अतिरिक्त अन्य भी ज्योतिषी होंगे जिनके ग्रन्थ वर्त्तमान में उपलब्ध नहीं होते हैं।

2.5.1 ब्रह्मगुप्त

ब्रह्मगुप्त गणित–ज्योतिष के बहुत बड़े आचार्य थे। वराहमिहिर और आर्यभट्ट के बाद और भास्कर के पहले जिन भारतीय गणितज्ञों पर अधिक शोध–कार्य हुए उनमें ब्रह्मगुप्त का नाम सर्वोपरि है। भास्कर ने इनके ग्रन्थ ब्राह्म–स्फुट–सिद्धान्त को आधार बनाकर ही अपने ग्रंथ सिद्धान्त शिरोमणि की रचना की।भास्कराचार्य ने इनको 'गणकचक्रचूड़ामणि' कहकर इनके प्रति अपनी अगाध श्रद्धा व्यक्त की है। इसी से ब्रह्मगुप्त की महत्ता को समझा जा सकता है।

ब्रह्मगुप्त ने अपना सिद्धान्त–ग्रन्थ'ब्राह्म–स्फुट–सिद्धान्त' तत्कालीन चापवंशीय नरेश के काल में लिखा था जिसके राज्य में भिल्लमालकाचार्य' के रूप में उनकी ख्याति थी। इनका जन्म शक ५२० में हुआ था। इनके पिता का नाम जिष्णुगुप्त था।

2.5.1.1 ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त

इसमें कुल २४ अध्यायों में १००८ श्लोक हैं। इसके प्रत्येक अध्याय के अंत में यह बताया गया है कि उसमें कितने छन्द हैं।प्रथम दस अध्यायों में सिद्धान्त–ज्योतिषीय विषयों का वर्णन है तदुपरांत शेष १४ अध्यायों में अन्य बहुत महत्त्व के विषय हैं, जिनमें दूषणाध्याय, अंकगणित, बीजगणित, शंकुच्छायादिज्ञानाध्याय, छेदश्चित्युत्तराध्याय और यन्त्राध्याय इन छः अध्यायों को छोड़कर शेष में पूर्वार्ध में वर्णित ज्योतिषीय विषयों की उपपत्ति का वर्णन है। पहले मध्यमाधिकार में ग्रहों की मध्यम गति की गणना है। दूसरे स्पष्टाधिकार में स्पष्ट गति जानने की रीति बतायी गयी है। इसी अध्याय में ज्या निकालने की रीति भी बतायी गई है, जिसमें त्रिज्या का मान ३२७० कला माना गया है। तीसरे त्रिप्रश्नाधिकार में दिशा, देश और काल ज्योतिष के इन तीन मुख्य विषयों पर चर्चा की गयी है।

इस ग्रन्थ के आरम्भ के १० अध्यायों की टीका पृथूदक द्वारा लिखी हुई मिलती है। यद्यपि कोलब्रुक ने अपने लेख में एकत्र लिखा है कि उसने संपूर्ण ग्रन्थ पर टीका लिखी है तथापि इसके अंकगणित और बीजगणित से सम्बन्धित अध्यायों पर कोलब्रुक का अंग्रेज़ी अनुवाद मिलता है।

2.5.1.2 खण्डखाद्य

यह ब्रह्मगुप्त का दूसरा ग्रन्थ है। ब्रह्मगुप्त ने शक५८७ में ६६ वर्ष की उम्र में इसकी रचना तिथि, नक्षत्रों और ग्रहों की सुगम रीति से गणना करने के लिए की। यद्यपि ब्राह्मस्फुट–सिद्धान्त में ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट्ट के कई मतों का कहीं पर समुचित कारणों से तो कहीं पर दुराग्रह के कारण खण्डन किया। किन्तु इस ग्रन्थ में उन्होंने आर्यभट्ट के कुछ मतों के अनुसार विषयों का उपस्थापन किया परंतु इस ग्रंथ में भी ब्रह्मगुप्त ने नवीन बातें बतायी हैं और कुछ संशोधन भी किये हैं। इस ग्रंथ के पूर्व और उत्तर ये दो भाग हैं। प्रथम भाग में ६ अधिकार हैं जिनमें कुल १६४ श्लोक आर्या छन्द में हैं। दूसरे भाग में ५ अधिकार हैं जिनमें कुल मिलाकर ७१ आर्याएं हैं।

2.5.2 लल्ल

भारतीय ज्योतिष–परम्परा के बड़े आचार्य माने जाते हैं। इनका काल ब्रह्मगुप्त के बाद का है। इनकी पहली विशेषता यह है कि इन्होंने सिद्धान्त के साथ–साथ संहिता स्कन्ध पर भी कार्य किया। उस काल–खण्ड में जबकि सिद्धान्त–ज्योतिष का अध्ययन ज़ोर पकड़ रहा था उन्होंने सिद्धान्त के साथ ही संहिता के महत्वपूर्ण भाग मुहूर्त पर काम किया। दूसरी बात जो लल्ल को भारतीय ज्योतिष के इतिहास में महत्त्वपूर्ण बनाती है वह है उनका ग्रन्थ शिष्यधीवृद्धिद जो कि सिद्धान्तस्कंध के ही एक उपविभाग तन्त्र शाखा का ग्रन्थ है। और भारतीय–ज्योतिष–वाङ्मय में तंत्र पद्धति पर अङ्गुलिगण्य ग्रन्थ मिलते हैं जिनमें लल्ल रचित तंत्र का बहु प्रसिद्ध ग्रंथ है, जिसे आर्यभटीयम के आधार पर लिखा गया है।

पंडित सुधाकर द्विवेदी ने लल्ल का समय ४२१ शक माना है। और उनके इस काल–निर्धारण का आधार आर्यभटीयम् ग्रन्थ है।

2.5.2.1 शिष्यधीवृद्धिदम्

कहा यह जाता है कि चूंकि लल्ल के शिष्यों को आर्यभट के ग्रन्थ आर्यभटीयम् को समझने में कठिनाई होती थी,इसलिए लल्ल ने शिष्यधीवृद्धिदम् ग्रन्थ की रचना की। उन्होंने विस्तारपूर्वक उदाहरण देकर यह ग्रंथ लिखा। इस ग्रन्थ में १००० श्लोक हैं।इसमें गणित–संबंधी अध्याय नहीं हैं, केवल ज्योतिष–संबंधी विषयों पर विस्तार पूर्वक चिन्तन किया है। यह ग्रन्थ मुख्यतया दो भागों में बंटा है – पहला गणिताध्याय और दूसरा गोलाध्याय। इस ग्रंथ के गणिताध्याय में मध्यमाधिकार आदि१३ अध्याय हैं।गोलाध्याय में छेद्यकाधिकार आदि ६ अध्याय हैं। इन अध्यायों के नाम से भी प्रकट होता है कि यह पुस्तक ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त के बाद लिखी गयी है और ज्योतिष संबंधी जिन बातों कीकमी ब्राह्मस्फुट–सिद्धांत में थी, वह यहाँ पूरी की गई है।अंकगणित या बीजगणित संबंधी कोई अध्याय इसमें नहीं है, जिससे प्रकट होता है कि ब्रह्मगुप्त के बाद,जब ज्योतिष और गणित संबंधी विकास बहुत तीव्रता से हुआ तब,इन दोनों शाखाओं पर स्वतन्त्ररूप से सविस्तार ग्रन्थ लिखने की परम्परा आरम्भ हो गयी। जिससे एक ओर कुछ विद्वानों यथा श्रीधर और महावीर ने केवल गणित–सम्बन्धी ग्रन्थों का प्रणयन किया,तो वहीं दूसरी ओर पृथूदकस्वामी,भटोत्पल आदि ने केवल ज्योतिष पर ग्रंथों की रचना की।

2.6 सिद्धान्त स्कन्ध का उन्नतिकाल

शक १००० से लेकर शक १६०० तक,यह कालखण्ड लगभग६०० वर्षों का है जब सिद्धान्त–स्कन्ध का तीव्र–गति से विकास हुआ। विद्वानों की बात करें तो भास्कराचार्य

से लेकर नित्यानंद तक के मुख्य गणितज्ञ और खगोलवेत्ता आचार्य इस कालखण्ड में समाहित हैं।

भास्कर के पूर्व जो सिद्धांत स्कंध की प्रगति का काल था उसने भास्कर के पश्चात् तीव्र गति पकड़ ली और विशेष ऊंचाई, नए आयामों तक जानेकी और सिद्धान्त स्कन्ध उन्मुख हुआ। इस काल–खण्ड में सिद्धान्त–ज्योतिष के क्षेत्र में अन्य काल खण्डों की अपेक्षा न केवल अधिक कार्य हुआ अपितु प्रयोगों और गणित के आधार पर विद्वानों में स्व–स्थापित सिद्धान्तों और पक्षों के मण्डन और दूसरे के पक्षों के खण्डन की परम्परा बड़ी ही समृद्ध रही। जिसने खगोलीय ज्योतिष के क्षेत्र में मौलिक भारतीय–चिन्तन–सरणि को अत्यन्त समृद्ध और प्रवाहपूर्ण बनाया है। इसमें अनेकों प्रतिभासम्पन्न खगोलज्ञों की विचार–तरंगें समय–समय पर अपनी उद्दाम गति से खगोल–रसिकों को आप्लावित और आनन्दित करती रहीं। इस अवधि की रचनाओं ने न केवल भारतीय ज्योतिष की प्रतिष्ठा सर्वत्र बढ़ाई अपितु अन्य देशों के ज्योतिष–सिद्धांतों को भी प्रभावित किया। इस कालखण्ड ने भारतीय विद्वानों की रुचि नक्षत्र–दर्शन और पञ्चांग निर्माण में बढ़ाई। परिणामस्वरूप विद्वानों में 'करण–ग्रंथों' के निर्माण की होड़ सी लग गयी। इस तरह देखा जाए तो, एक ही तरीक़े के सिद्धान्त–ग्रंथों की (जिसमें गणित पर अधिक ज़ोर हो,जैसाकि आर्यभट्ट और ब्रह्मगुप्त के ग्रंथों में देखने को मिलता है) रचना से आगे बढ़कर पंचांगों के निर्माण हेतु सबल प्रायोगिक (खगोलीय) पक्षों से युक्त ग्रंथों (यथा – सिद्धांत शिरोमणि) की रचना निश्चय ही भारतीय–ज्योतिष,विशेषकर सिद्धांत–ज्योतिष के उन्नति का ही परिचायक है। इस नवीन दृष्टिकोण ने आगे चलकर ग्रहों के मन्दोच्च–नीच–पातादि सम्बन्धी सारिणी के निर्माण और उसकी शुद्धता के ज्ञान हेतु वेध–शाला–निर्माण, दृग्गणितैक्यता विचार और निरयण–सायन आदि विशुद्ध खगोलीय विषयों को भारतीय–ज्योतिष–जगत् के अध्ययन और शास्त्रार्थ का केन्द्र बनाया। अतः विचार करने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचना स्वाभाविक है कि यह काल–खण्ड निश्चय ही सिद्धान्त–ज्योतिष का उन्नति–काल होने के कारण भारतीय ज्योतिष के इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है जिसने न केवल भारतीय–ज्योतिष अपितु संपूर्ण भारतीय–वाङ्मय पर अपनी अमिट छाप छोड़ी।

साहित्य–जगत में यदि कोई काल–खण्ड महत्वपूर्ण माना जाए तो उसमें कारण निश्चय ही उस अवधि की कुछ कालजयी रचनाएं और उनके प्रणेता है। यह काल–खण्ड भी इस बात का अपवाद नहीं है।इस कालखण्ड में अनेकों विद्वानों ने अपनी विशिष्ट रचनाधर्मिता से ज्योतिषशास्त्र रूपी महासमुद्र को समृद्ध बनाया। इन विद्वानों में भोजराज, शतानंद, महेश्वर, भास्कराचार्य, महादेव, पद्मनाभ, गंगाधर, मकरन्दाचार्य, केशव, गणेश, ज्ञानराज, अनन्त, रघुनाथ, कृपाराम, दिनकर, रामभट्ट, श्रीनाथ, विष्णु, मल्लारि, विश्ववनाथ, रंगनाथमुनीश्वर, कमलाकर और नित्यानन्द प्रमुख हैं। इसके अलावा कई अन्य भी हैं जिनका उल्लेख आपको भारतीय–ज्योतिष के इतिहास के ग्रंथों में मिलेगा। ज्योतिष के इतिहास–सम्बन्धी ग्रंथों में आये नामों के अतिरिक्त अन्य भी विद्वान् निश्चय ही हुए जिनकी कृतियों का उल्लेख या तो मिलता नहीं है या मिलता भी है तो वे ग्रन्थ मूल रूप में प्राप्त नहीं होते हैं। ऐसी स्थिति में जो ज्ञात विद्वान् हैं उन सबका संक्षिप्त सार्थक परिचय भी यहाँ केवल एक खंड में दे पाना संभव नहीं है, तो फिर एक इकाई की तो बात ही क्या? इस स्थिति में इस काल–खण्ड के प्रतिनिधि बने हुए कुछ विद्वानों काही परिचय इस इकाई में दिया जा रहा है।

2.6.1 भास्कराचार्य (भास्करद्वितीय) –

भास्कराचार्य भारतीय–ज्योतिष–रूपी आकाश के भास्कर–स्वरूप हैं। विलक्षण प्रतिभा के धनी भास्कराचार्य की गणितीय क्षमता, खगोलीय ज्ञानपरक मेधा और साहित्यिक कौशल अपने आप में अप्रतिम है। जहां एक ओरभास्कर के चक्रवाल, कुट्टक, वर्गप्रकृति इत्यादि गणितीय–कौशल ने गणितीय–विद्वानों को आश्चर्य चकित किया वहीं दूसरी ओर उनके उदयान्तर संस्कार, लम्बनसंस्कार, ज्योत्पत्ति, प्रत्यब्दशुद्धि इत्यादि ने खगोलीय पंडितों को अपना प्रशंसक बनाया। उनकी बेजोड़ प्रतिभा का एक तीसरा पहलू भी है, जो है, उनकी काव्यरचना–धर्मिता, जिसने बड़े–बड़े साहित्यिकों से भी अपना लोहा मनवाया।

भास्कराचार्य का जन्म–काल१०३६ शक (१११४ ई.) है। करण–कुतूहल ग्रन्थ का आरम्भ ११०५ शकमें हुआ था, इसलिए यही इसका रचनाकाल है, जो ११८३ ई. होता है। इससे प्रकट होता है किकरण–कुतूहल की रचना ६६ वर्ष की अवस्था में की गयी थी।इनके पिता का नाम महेश्वर था जिनसे इन्होंने ज्योतिष की शिक्षा प्राप्त की, चूंकि वे स्वयं एक विद्वान् ज्योतिषी थे।

2.6.2 भास्कराचार्य का कर्तृत्व

इनके बनाये चार ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं : १– सिद्धान्त–शिरोमणि, दो भागों में, जिनके नाम 'गणिताध्याय' और 'गोलाध्याय' हैं, २ – लीलावती, ३– बीजगणित और ४– करण–कुतूहल। मूल रूप में इनके ग्रन्थ सिद्धान्त शिरोमणि के 4 अध्याय हैं। 1. लीलावती, 2. बीजगणित, 3. ग्रहगणित, 4. गोलाध्याय। सिद्धान्तशिरोमणि पर इन्होंने स्वयं 'वासना भाष्य' नामक टीका भी लिखी है। लीलावती और बीजगणित भी वास्तव में सिद्धान्त–शिरोमणि के ही अंग हैं यह भास्कर ने स्वयं लिखाहै।

2.6.2.1 लीलावती

लीलावती नामक ग्रंथ में २७८ पद्य हैं। इसमें आरम्भ में विविध मापन इकाइयां और संख्या का वर्णन है। पूर्णांकों और भिन्न संख्याओं के योग, अंतर, गुणा, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल कावर्णन है जिन्हें भास्कर ने 'परिकर्माष्टक' कहा है। इसके अतिरिक्त त्रैराशिक, श्रेढी–व्यवहार क्षेत्र–व्यवहार, छाया–व्यवहार, कुट्टक आदि विषय इस ग्रन्थ में वर्णित हैं। अंत में गणितपाश (क्रमचय) नामक एक अध्याय और है। इसकी भाषा बड़ी ललित है। इसकी संस्कृत और हिंदी टीकाएं भी मिलती हैं। जैसे गंगाधर की 'गणितामृतसागरी' (१३४२ श•), ग्रह–लाघवकार गणेश दैवज्ञ की 'बुद्धिविलासिनी' (१४६७ शक), धनेश्वर दैवज्ञ की 'लीलावतीभूषण', मुनीश्वर की' लीलावतीविवृति' (१५४७ शक), महीधर की 'लीलावतीविवरण', रामकृष्ण की 'गणितामृतलहरी', नारायण की पाटीगणित–कौमुदी, रामकृष्ण देव की 'मनोरंजना', रामचंद्र कृत 'लीलावती–भूषण', विश्वरूप की 'निसृजृ–दूती', सूर्यदास की 'गणितामृतकूपिका' आदि।

2.6.2.2 बीजगणित

इसमें अव्यक्त संख्याओं का धनर्णषड्विध, खषड्विध, करणीषड्विध, एकवर्ण समीकरण, अनेकवर्ण समीकरण एकवर्ण मध्यमाहरण, अनेकवर्ण मध्यमाहरण, चक्रवाल, कुट्टक, वर्गप्रकृति इत्यादि विषय वर्णित हैं। भास्कराचार्य के बीजगणित पर कृष्ण दैवज्ञ की बीजनवांकुर टीका (शक १५२४) और सूर्यदास की टीका प्रसिद्ध है। उपपत्ति के साथ गीजगणित टीका पं. सुधाकर द्विवेदी ने भी की है। इनके अतिरिक्त और भी कई टीकाएँ हैं।

2.6.2.3 सिद्धांतशिरोमणि

यह सिद्धांत ज्योतिष का एक उत्तम और प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसमें ज्योतिष सिद्धान्त की सभी बातें विस्तार और उपपत्ति के साथ बतायी गयी हैं जिनका वर्णन ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त अथवा महासिद्धांत में है। इसकी अनेक टीकाएं हैं। ग्रहलाघवकार गणेश दैवज्ञ की भी टीका इस पर है। नृसिंह ने वासनाकल्पलता अथवा वासनावर्तिका नामक टीका १५४३ शक में लिखी थी, मुनीश्वर या विश्वरूप की मरीचि नामक टीका बहुत उत्तम और विस्तार के साथ १५५७ शक में लिखी गयी थी। आर्यभटीय के टीकाकार परमेश्वर ने सिद्धान्त–दीपिका नामक टीका की थी। रंगनाथ की मितभाषिणी नामकटीका शक १५८० के लगभग लिखी गयी थी।

सिद्धान्तशिरोमणि के गोलाध्याय में चौदह (१४) अध्याय हैं। ग्रन्थ में पृथ्वी की स्वाभाविक प्रकृति का उल्लेख करते हुए उसके गुरुत्वाकर्षण–शक्ति का भी वर्णन भास्कर करते हैं।

आकृष्टशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं गुरुं स्वाभिमुखम् स्वशक्त्या।
आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात् क्वपतत्वियं खे।।

(सिद्धान्तशिरोमणि,गोलाध्याय,भुवनकोश, ६)

अर्थात् पृथ्वी में आकर्षण–शक्ति है, उससे वह आकाश में फेंकी गयी भारी वस्तुओं को अपनी ओर खींचती है और वह भारी वस्तु गिरती हुई दिखायी पड़ती है, परन्तु पृथ्वी कहीं नहीं गिर सकती, क्योंकि आकाश सब ओर समान है।

भास्कराचार्य ने इस ग्रन्थ में भूमध्य–रेखा पर राशिचक्र की स्थिति और इसके बाद ध्रुव के उन्नतांश और स्थान के अंक्षांश में संबंध बताया गया है। फिर पृथ्वी की परिधि, उसका व्यास और उसके पृष्ठ का क्षेत्रफल बताया गया है। इसमें परिधि और व्यास का अनुपात बहुत शुद्ध (३.१४१६) लिया गया है। भास्कराचार्य ने पृष्ठ के क्षेत्रफल के संबंध में लल्लाचार्य की गणना को अशुद्ध बताया है क्योंकि लल्ल ने अशुद्ध सूत्र के अनुसार परिधि से वृत्त के क्षेत्रफल को गुणा किया था। भास्कराचार्य ने परिधि को व्यास से गुणा किया है, जो पूर्णतया शुद्ध है।

इसके अतिरिक्त गोलाध्याय में मध्यगतिवासना, छेद्यकाधिकार, ज्योत्पत्तिवासना, गोलबन्धाधिकार, त्रिपश्नवासना, ग्रहणवासना, उदयास्तवासनाध्याय, शृङ्गोन्नतिवासनाध्याय, यन्त्राध्याय और ऋतुवर्णनाध्याय हैं।

गणिताध्याय भी सिद्धान्तशिरोमणि का एक भाग है। इसमें ग्रहों के साधन अर्थात् स्पष्ट राश्यादि ज्ञान के लिए आवश्यक गणित पक्ष पर अधिक बल दिया गया है। इसमें मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, पर्वसम्भवाधिकार, चंद्रग्रहणाधिकार,इत्यादि अध्याय वर्णित हैं।

त्रिप्रश्नाधिकार में इन्होंने बहुत सी नवीन रीतियाँ लिखी हैं और उसमें अनेक विषयों में अपनी दक्षता प्रकट की है। उन्होंने शंकु संबंधी इष्टदिक्छायासाधन किया है जो उनके पूर्ववर्तियों ने नहीं किया। उन्होंने पातसाधन की भी नवीन रीति प्रस्तुत की। इसमें उन्होंने प्रतिपादित किया कि सूर्य की गति क्रांतिवृत्त में सदा समान नहीं रहती है। इष्टकालीन मध्यम और स्पष्ट रवि के अंतर अर्थात् फल संस्कार के अनुसार स्पष्ट सूर्योदय मध्य से बाद में या पहले होता है। इस संबंधी संस्कार को भुजान्तर संस्कार कहते हैं। उदयान्तर इनका नवीन शोध है। पृथ्वी अपनी धुरी पर विषुवत वृत्त में घूमती है, क्रांतिवृत्त में नहीं। अतः क्षितिज में क्रान्तिवृत्तीय ३० अंश का उदय होने में जितना

समय लगता है उतना समय सदा नाडीवृत्त के ३० अंश को उदित होने में नहीं लगता है। इससे सम्बन्धित संस्कार ही उदयान्तर है।

2.6.2 मकरन्दाचार्य

मकरंदाचार्य का नाम भारतीय ज्योतिष के इतिहास में बड़ी ही श्रद्धा के साथ लिया जाता है। इसका कारण यह है कि मकरंद ने शक १४०० (१४७८ ई.) में सूर्य सिद्धांत के अनुसार तिथ्यादि साधन के लिए या यूं कहें की पंचांग बनाने हेतु अपने ही नाम की एक सारिणी का निर्माण काशी में किया था। इस सारिणी को ही आधार बनाकर काशी और मिथिला आदि प्रांतों में पूर्व में पंचांग बनाए जाते थे और वर्त्तमान में भी बनाये जा रहे हैं। इस सारिणी पर दिवाकर की'मकरन्द–विवरण'नामक टीका भी प्राप्त होती है जो कि विश्वनाथ के द्वारा प्रदर्शित उदाहरणों के साथ प्रकाशित हुई है। गोकुलनाथ ने १६८८ शकमें इसकी उपपत्ति भी की है। इस सारिणी का अनुवाद अंग्रेज़ी में बेंटली ने किया था जिसका कालान्तर में विस्तार करते हुए पं. रघुवीरदत्त ज्योतिषी ने 'सिद्धखेटिका' नामक एक सारिणी का निर्माण किया जो शक १८०५ (१८८३ ई.) में भारतमित्र यन्त्रालय से प्रकाशित हुई थी। इस सारिणी में तिथि, नक्षत्र, योगों और ग्रहों की दैनिक गतियां दी गयी हैं जिससे इन विषयों की स्पष्ट गणना बहुत ही सुगमतता से की जा सकती है। इसमें पंचांग–निर्माण से सम्बन्धित प्रायः सभी बातें बतायी गयी हैं। इसमें समय–समय पर बीज संस्कार करने हेतु न सिर्फ निर्देश मिलता है बल्कि इससे सम्बन्धित नियम भी बताए गए हैं।

2.6.3 गणेश दैवज्ञ

गणेश दैवज्ञ ज्योतिष–शास्त्र के पारम्परिक विद्वान् थे। विद्वान् ज्योतिषियों के रूप में उनके कुल की बड़ी ही प्रतिष्ठा थी। अपने पिता केशव जो कि प्रसिद्ध केशवीय जातक पद्धति के रचनाकार थे, से ही उन्होंने ज्योतिष–विद्या का ज्ञान अर्जित किया। वे अपने पिता के समान ही ज्योतिष के सभी स्कन्धों के अच्छे विद्वान् थे। वे ग्रहों के साधन में दृक्पक्षता के बड़े हिमायती थे। इनका मुख्य ग्रंथ 'ग्रहलाघव' है जिसमें ग्रहों की गणना करने के लिए ज्या, कोटज्या आदि का उपयोग नहीं किया गया है। यह बड़े पांडित्य की बात है। सम्पूर्ण भारत में इनका यह ग्रन्थ जितना प्रचलित हुआ और इसके आधार पर जितने पंचांगों का निर्माण हुआ उतना और किसी भी ज्योतिषी के ग्रंथ का नहीं हुआ।

2.6.3.1 गणेश दैवज्ञ का काल व कृतियां

ग्रहलाघव में क्षेपक १४४२ शक के लिए गए हैं इससे ग्रन्थारम्भ–काल कम से कम १४४२ शक माना जा सकता है इस ग्रन्थ के कम से कम १६–२० वर्ष पहले गणेश का जन्म माना जाए तो इनका जन्म काल १४२५ शक के आस–पास माना जा सकता है।

गणेश दैवज्ञ ने ग्रहलाघव, लघुतिथिचिन्तामणि, बृहत्तिथिचिन्तामणि, सिद्धान्तशिरोमणि की विवृति टीका, लीलावती की टीका इत्यादि ग्रंथों की रचना की।

2.6.3.2 ग्रहलाघव

ग्रहलाघव को गणेश का प्रथम ग्रन्थ माना जाता है चूंकि इसमें एक अभीष्ट शक से ग्रह–साधन किया गया है अतः यह एक करण ग्रन्थ है इसमें क्षेपक शक १४४२ के आरम्भ या यूं कहें कि १४४१ फाल्गुन अमान्त के हैं। इसके अतिरिक्त गणित की सुगमता के लिए गणेश ने प्रत्येक ११ वर्षों में सूर्यादि सभी ग्रह कितनी गति चलते हैं इसकी गणना करके प्रत्येक ग्रह के ११ वर्षात्मक राश्यादि की 'ध्रुवक' संज्ञा की है।

गणेश ने इस ग्रन्थ में ग्रह–साधन में तत्कालीन सिद्धान्तों से साधित ग्रह दृक्तुल्यता के कितने निकट हैं और उनमें कितना संस्कार करने से वे दृगुपलब्ध होते हैं इसका भी उल्लेख किया है।

सौरोर्कोऽपि विधूच्चमङ्ककलिकोनाब्जो गुरुस्त्वार्यजो
ऽसृग्राहू च कजं ज्ञकेन्द्रकमथार्यः सेषुभागः शनिः।
शौक्रं केन्द्रमजार्यमध्यगमितीमे यान्ति दृक्तुल्यताम्,

(ग्रहलाघव, मध्यमाधिकार)

अर्थात् वर्तमान सूर्यसिद्धान्तानुसार सूर्य और चन्द्रोच्च (विधूच्चम्) दृक्तुल्य मिलते हैं। सूर्यसिद्धान्त से साधित चन्द्रमा में से ६ कला घटाने पर वह भी दृक्सिद्ध होता है। आर्यपक्षीय ग्रन्थ करणप्रकाश द्वारा लाए हुए गुरु, मङ्गल और राहु दृक्सिद्ध होता हैं। आर्यपक्षीय मत से ही साधित शनि में ५ अंश जोड़ने पर वह भी दृक्सिद्ध होता है। ब्राह्मपक्षीय ग्रन्थ करणकुतूहल से लाया हुआ बुधकेन्द्र दृक्तुल्य होता है। आर्य और ब्राह्म–पक्षीय मत से लाए हुए शुक्र–केन्द्रों को आपस में जोड़कर आधा करने से वह दृक्सिद्ध होता है।

इस ग्रंथ में मध्यमाधिकार, रविचन्द्रस्पष्टाधिकार, पंचतारास्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, आदि १६ अध्याय हैं।ग्रहलाघव की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें ज्या–चाप की गणित के बिना ही ग्रहों के साधन बताए गए हैं। इसके बावजूद इसकी गणित बहुत सारे सिद्धान्त ग्रंथों की अपेक्षा बहुत शुद्ध है।

शक १५०८ में गंगाधर ने, शक १५२४ में मल्लारि ने और लगभग शक १५३४ में विश्वनाथ ने, इसकी टीकाएँ लिखी थी। सुधाकर द्विवेदी ने इस पर उपपत्ति के साथ एक सुन्दर टीका लिखी है, जिसमें मल्लारि और विश्वनाथ की टीकाओं का भी समावेश है। इस ग्रंथ का प्रचार महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, ग्वालियर आदि प्रान्तों में अब भी है।

2.7 सिद्धान्तस्कन्ध का चरमोत्कर्ष

शक १४४७ में अनन्त कृत अनन्तसुधारस, शक १५०० के लगभग दिनकर द्वारा रचित ब्राह्मसिद्धान्त पर आधारित दो करण–ग्रन्थ क्रमशः खेटकसिद्धि और चन्द्रार्की, शक १५१२ में रामभट का सूर्य सिद्धान्त पर आधारित करण रामविनोद, १५४१ शक में नागेश की ग्रहप्रबोध १५७५ शक में कृष्ण कृत ग्रहलाघवाधारित करणकौस्तुभ, १६२६ शक में जटाधर द्वारा निर्मित फत्तेशाह प्रकाश, १६८८शकमें शंकर कृत वैष्णवकरण, १६८६ शक में मणिरामकृत ग्रहगणितचिन्तामणि इत्यादि प्रसिद्ध हैं। ये सभी करण–ग्रन्थ हैं, जिनका मैंने नामोल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त सिद्धान्त–ग्रंथों की भी रचना हुई जिनमें १४२५ शक में ज्ञानराज द्वारा प्रणीत सिद्धान्तसुन्दर,१५६१ शक मेंनित्यानंद द्वारा रचित सिद्धान्तराज, प्रायः १५६८ शक में मुनीश्वर कृत सिद्धान्तसार्वभौम, शक १५८० में कमलाकर कृत सिद्धान्ततत्त्वविवेक आदि प्रमुख हैं।

शालिवाहन शक के सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से भारतीय ज्योतिष का आधुनिक काल माना जा सकता है। इस काल में नीलाम्बर झा, सामन्तचन्द्रशेखर, बापूदेव शास्त्री, सुधाकर द्विवेदी, वेंकटेश बापूकेतकर, बाल गंगाधर तिलक, दीनानाथ शास्त्री चुलेट,शंकर बालकृष्ण दीक्षित जैसे अनेकों विद्वान् हुए। इनमें से अधिकतर विद्वान् अंग्रेज़ी भाषा और पाश्चात्य गणित इन दोनों से भली–भांति परिचित थे। ऐसे विद्वानों को अंग्रेज़ी भाषा और पाश्चात्य गणित के अध्ययन हेतु शासन ने पुरस्कार, उपाधि और आजीविका देकर अत्यधिक प्रोत्साहित भी किया।

इस राजनैतिक–शैक्षिक परिवर्तन ने कुछ अच्छा और कुछ बुरा दोनों ही प्रकार का प्रभाव भारतीय–ज्योतिष–साहित्य पर डाला। विदेशी भाषा और साहित्य ने भारतीय विचारकों और विद्वानों को भी प्रभावित किया। फलतः भारतीय ज्योतिष में बड़ी–बड़ी पद्य–रचनाएं बनना कम हो गईं। सिद्धान्त–ज्योतिष में वेध–प्रक्रिया को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। ग्रह–नक्षत्रादि के वेध में भारतीय विद्वानों की रुचि विशेष रूप से बढ़ी। पाश्चात्य–खगोलीय–सिद्धान्तों और आधुनिक गणित के समावेश ने इस रुचि को और बढ़ाया। भारतीय–ज्योतिष का खगोलीय पक्ष और अधिक प्रायोगिक हो गया। नक्षत्रों की स्थिति, विविध–अयनांश–वाद, सायन–निरयणवाद,विविध खगोलीय यन्त्रों की संरचना विधि के साथ–साथ ग्रह–स्पष्टीकरणार्थ च्युतिकिरण वक्रीभवन प्रभृति नए संस्कार, नए–नए गणितीय नियम, अयन–संपात, ध्रुव–चलन और नक्षत्रों की स्थिति के आधार पर वेदों, वैदिक साहित्य आदि के काल–निर्धारण इत्यादि इस काल में भारतीय–ज्योतिषीय–विद्वानों के अध्ययन के विषय बन गए। धारणाओं और विचारों के आधार पर इस काल में विद्वानों के दो स्पष्ट वर्ग बन गए थे। एक वर्ग ज्योतिष के ज्ञान और प्राचीनता में भारतीय–प्रधानता को स्वीकार करता था, जिनमें बाल गंगाधर तिलक, शंकर बालकृष्ण दीक्षित, दीनानाथ शास्त्री चुलेट मुख्य थे। तो दूसरा वर्ग ज्योतिष के ज्ञान और प्राचीनता में पाश्चात्य विद्वानों के मतों का पक्षधर था, जिनमें भारतीय ज्योतिष के ज्ञान और प्राचीनता को कम करके आंका गया या यूं कहें की पूर्व वर्ग की अपेक्षा अर्वाचीन माना गया। ये मत कोलब्रुक, विन्टरनित्ज, बेंटली, बर्जेस जैसे पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा स्थापित और बापूदेव शास्त्री, सुधाकर द्विवेदी जैसे विद्वानों द्वारा समर्थित हुआ।

इस प्रकार देखा जाए तो यह काल–खण्ड निश्चय ही भारतीय ज्योतिष का आधुनिक–काल कहा जाना चाहिए। इस कालखंड में भारतीय–ज्योतिष, विशेषकर सिद्धान्त–ज्योतिष में एक ठहराव सा दिखता है। जो भी नए संस्कार ग्रह–स्पष्टीकरण में प्रयोग में आए या फिर नई विधा गणित में आई वह पश्चिम (केपलर आदि) से पूर्णतया प्रभावित थी। दूसरे शब्दों में कहें तो शुद्ध (या मौलिक) भारतीय–चिंतन का शनैः–शनैः अभाव होने लगा। जो प्राचीन–भारतीय–परम्परा के संवाहक थे वो या तो प्रकाश में नहीं आए या तत्कालीन शासन से समर्थित या प्रोत्साहित नहीं हुए।

2.8 सारांश

ग्रहों की गति, स्थिति, ग्रहण–काल आदि की गणना ज्योतिष के जिस स्कन्ध में की जाए वह 'सिद्धान्त' कहलाता है। इस सिद्धान्त के ही तीन अवान्तर भेद हैं – १. सिद्धान्त, २. तन्त्र, ३. करण। जिस भेद में कल्प से लेकर अभीष्ट समय तक के दिनों की गणना के आधार पर ग्रह का स्पष्ट राश्यादि मान ज्ञान किया जाए वह 'सिद्धान्त' नाम से प्रसिद्ध है। जिस भेद में अभीष्ट युग से लेकर वर्तमान समय तक के दिनों की गणना के आधार पर ग्रह का स्पष्ट राश्यादि ज्ञान किया जाए वह 'तन्त्र' इस नाम से प्रसिद्ध है। जिस भेद में अभीष्ट शक से लेकर वर्त्तमान समय तक के दिनों की गणना के आधार पर ग्रह का स्पष्ट राश्यादि मान ज्ञान किया जाए वह 'करण' नाम से प्रसिद्ध है। १००० शक से लेकर १६०० शक तक का लगभग ६०० वर्षों का कालखण्ड सिद्धान्त का उन्नतिकाल है। इस काल के विद्वानों में भोजराज, शतानंद, महेश्वर, भास्कराचार्य, महादेव, पद्मनाभ, गंगाधर, मकरन्द, केशव, गणेश, ज्ञानराज, अनन्त, रघुनाथ, कृपाराम, दिनकर, रामभट्ट, श्रीनाथ, विष्णु, मल्लारि, विश्ववनाथ, रंगनाथ मुनीश्वर, कमलाकर और नित्यानन्द प्रमुख हैं। १७वीं से १९वीं सदी तक सिद्धान्त स्कन्ध का चरम विकास का काल–खण्ड था, जिसमें नीलाम्बर झा, सामन्तचन्द्रशेखर, बापूदेव शास्त्री, सुधाकर द्विवेदी, वेंकटेश बापूकेतकर बाल गंगाधर तिलक, दीनानाथ शास्त्री चुलेट,शंकर बालकृष्ण दीक्षित जैसे अनेकों विद्वान् हुए।

2.9 शब्दावली

कलना– गणना।

द्युसदाम् – ग्रहों के।

चारः – संचरण।

धिष्ण्यम् – नक्षत्र।

वेत्ति– जानता है।

ज्योतिःशास्त्रविचारसारचतुरप्रश्नेषु – ज्योतिषशास्त्रीय सारपूर्ण गम्भीर प्रश्नों में।

अकिञ्चित्कर– महत्वहीन या प्रभावहीन।

भित्तौ– दीवार पर।

कंठीरव– शेर।

रसगुणपूर्णमही– १०३६।

वृथा – व्यर्थ।

भवलयस्य –राशिचक्र का।

अर्कलवाः समाः – बराबर बारह भाग।

किमु– क्यों।

विधूच्चम्– चन्द्रोच्च।

अब्जः – चन्द्रमा।

अङ्ककलिकोनः – ६ कला घटा हुआ।

असृग्– मङ्गल।

कजम्–ब्राह्मपक्षीय।

ज्ञकेन्द्रकम्– बुधकेन्द्र।

2.10 बोध प्रश्न

1. सिद्धांत ज्योतिष के उन्नति–काल का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. भास्कराचार्यके कर्तृत्व पर प्रकाश डालिए।
3. भारतीय ज्योतिष के इतिहास में गणेश दैवज्ञ की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

2.11 उपयोगी पुस्तकें

१. भारतीय ज्योतिष मूल लेखक – शंकर बालकृष्ण दीक्षित, अनुवाद–झारखंडी शिवनाथ (१९९०) प्रकाशक–उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ (द्वितीय संस्करण)।

२. भारतीय ज्योतिष का इतिहास,प्रसाद गोरख (१९९०), उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।

३. भारतीय ज्योतिष, शास्त्री नेमीचन्द्र (२०१४), भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली।

४. गणक तरंगिणी।द्विवेदी सुधाकर (१८९२)